كُلُّ نَفْسٍ ذَآئِقَةُ الْمَوْتِ
जनाज़े के मसाइल
मुअल्लिफ़
अमजद अली नदवी
सिद्धार्थ नगर (यू.पी.)
इज़ाफ़ा, एडीटिंग व तर्तीब
मुहम्मद इल्यास मालपुरी
मोहल्ला रंगरेज़ान, मालपुरा ज़िला टोंक (राज.)

नाम किताब : जनाज़े के मसाइल

मुअल्लिफ़ : मौलाना अमजद अली नदवी
सिद्धार्थ नगर (यू.पी.)

इज़ाफ़ा व एडीटिंग : मुहम्मद इल्यास मालपुरी

तादाद पेज : 32

एडीशन : अव्वल 10 सितम्बर 2009
19 रमज़ान 1430 हिजरी)

तादाद : 1000

क़ीमत :

कम्पोज़िंग–प्रिण्टिंग

ख़लीज मीडिया

गुलज़ारपुरा बम्बा जोधपुर-2

मोबाइल : 99285-92786, 97994-10099

फ़हरिस्त मज़ामीन

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम.

मुक़द्दमा

हर तरह की तारीफ़ अल्लाह तआला ही के लिये ज़ेबा है जो हय्युल–क़य्यूम (ज़िन्दा और जावेद) है; जिसको कभी मौत नहीं आएगी। हम उसकी ही हम्दो–षना करते हैं, उससे ही मदद चाहते हैं, उसी से माफ़ी तलब करते हैं और ज़िन्दगी से लेकर मौत तक के हर मामले में उसी की तरफ़ रुजूअ करते हैं। लाखों–करोड़ों दरुदो–सलाम नाज़िल हो ख़ातिमुन्नबिय्यीन, सय्यिदुल मुर्सलीन हज़रत मुहम्मद (ﷺ) पर जिन्होंने दीने इस्लाम की तालीम न सिर्फ़ हम तक पहुँचाई बल्कि आप ने ज़िन्दगी गुज़ारकर सारे इन्सानों के सामने उस्व–ए–हसना (उत्तम आदर्श) भी पेश किया।

आप (ﷺ) का इर्शाद है, '**लज़्ज़तों को तोड़ देने वाली यानी मौत को ज़्यादा से ज़्यादा याद करो।**' (तिर्मिज़ी, निसाई, इब्ने माजा)

इसमें किसी को कोई शक नहीं कि अल्लाह तआला ने अपनी मख़्लूक़ में हर एक के लिये एक तयशुदा वक़्त मुक़र्रर कर दिया है। उस मुक़र्रर वक़्त के पूरा हो जाने के बाद हर शै को मौत आनी है और अल्लाह के फ़रिश्ते उनकी रूहें क़ब्ज़ कर लेते हैं और वो ज़र्रा बराबर भी कोताही नहीं करते। जो लोग मौत के बारे में ग़ौरो–फ़िक्र करते हैं, उन्हें मालूम हो जाएगा कि यह निहायत अहम और एक ऐसा प्याला है जो मुक़ीम हो या मुसाफिर सब पर पेश किया जाएगा। मौत के बाद हर बन्दे को उसके अअमाल के मुताबिक़ जन्नत या जहन्नम में ले जाया जाएगा।

मौत के बाद हर शख़्स को क़ब्र की हौलनाकियों के मंज़र का सामना करना है और हिसाब–किताब और जज़ा व सज़ा के मरहलों से गुज़रना है। इन्सान को यह हुक्म दिया गया है कि वो अल्लाह तआला से मुलाक़ात के लिये हर वक़्त तैयार रहे क्योंकि वो नहीं जानता कि '**मलकुल– मौत (मौत का फ़रिश्ता)**' उसकी रूह क़ब्ज़ करने कब आ पहुँचेगा? अल्लाह तआला ने इस हक़ीक़त को क़ुर्आन मजीद में तीन जगह (यानी सूरह आले इमरान : 185, सूरह निसा : 78, सूरह अन्कबूत : 57) पर वाज़ेह तौर पर बयान फ़र्माया है।

मलकुल मौत अभी किसी के पास गया है, क़रीब है कि वो हमारे पास भी आने वाला हो। सल्फ़–सालिहीन हर वक़्त मौत के ख़ौफ़ व घबराहट को शिद्दत से याद रखा करते थे और इसीलये प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (ﷺ) की अहादीष के मुताबिक़ मौत को ज़्यादा से ज़्यादा याद करते थे और मौत के बारे में ग़ौरो–फ़िक्र करते थे।

मेरे भाइयों, माँओं और बहनों! जिस वक़्त मौत की क़ुर्बत, दुनिया से कूच करने के वक़्त और अलविदाई की घड़ी के आ पहुँचने का एहसास होता है, नीज़ आँखें चौंधिया जाती है; पुतलियाँ पलट जाती हैं; उसके अअज़ा जवाब देने लगते हैं और वो दुनिया की फ़ानी (नश्वर) और आख़िरत की दायमी (चिरस्थाई) ज़िन्दगी के बीच होता है। उस वक़्त हालते–नज़अ में पड़े हुए इन्सान की ज़बान से कुछ कलिमात या नसीहतें निकलती हैं; या फिर वो अपने हाथों, आँखों और दूसरे अअज़ा से इशारे करता है। उसके अक़वाल और अहवाल में नसीहत व इबरत होती है और आम तौर पर यही चीज़ें उसके 'ख़ात्मा बिल ख़ैर (भलाइयों पर मौत)' या 'ख़ात्मा बिल शर (बुराइयों पर मौत)' की दलालत करती है। हम अल्लाह से दुआ करते हैं कि हमें ईमान की हालत में मौत नसीब हो, आमीन!

ये किताब दिलों को नरम करने और लोगों को नसीहत करने की ग़रज़ से लिखी गई है। क़ारेईने किराम से गुज़ारिश है कि अगर इस किताब में कोई कमी या नुक़्स मुलाहिज़ा फ़र्माएं तो बराहे करम इत्तिला फ़र्माएं ताकि आइन्दा उसकी इस्लाह की जा सके।

अल्लाह से दुआ है कि वो हमारी जाँ–कनी के वक़्त को अच्छा व बेहतर बनाए। उस वक़्त हमें अल्लाह की रज़ामन्दी और अबदी नेअमतों वाली जन्नत की ख़ुशख़बरी सुनाई जाए और उसकी बशारत में हमारे वालिदैन, औलाद व ज़ुर्रियत और तमाम मुस्लिम भी शरीक हों। हम अल्लाह से दुआ करते हैं कि वो हमें मरते दम तक ईमान व तक़वा–परहेज़गारी पर क़ायम व षाबित क़दम रखे। हमारा ख़ात्मा बिल ख़ैर करे। हमें, हमारे वालिदैन, हमारी औलाद, अज्दवाज़ और हमारे दोस्त–अहबाब को अंबिया, सिद्दीक़ीन और शुहदा व स्वालिहीन के साथ इकट्ठा फ़र्माए, जिन पर अल्लाह ने अपना इन्आम किया है और वे बेहतरीन रफ़ीक़ (साथी) हैं। आमीन! तकब्बल या रब्बल आलमीन!

दुआगो,

सलीम ख़िलजी

पेश लफ़्ज़

अल्लाह तआला का बेशुमार शुक्र व एहसान है कि उसने नाचीज़ को यह किताब आपकी ख़िदमत में पेश करने की तौफ़ीक़ बख़्शी, ख़ाकसार 'जनाज़े के मसाइल' जैसी अहम व ज़रूरी किताब आपकी ख़िदमत में पेश करते हुए बेहद ख़ुशी महसूस कर रहा है।

बिरादराने इस्लाम! ये एक हक़ीक़त है कि अल्लाह तआला एक है, बेमिषाल है और तमाम ऐबों से पाक है। वो हमेशा से है और हमेशा रहेगा। उसने आसमानो–ज़मीन, सूरज व चाँद–सितारे बनाए। यही नहीं दुनिया में ऐसी–ऐसी नायाब चीज़ें बनाई जिनका हम आए दिन मुशाहिदा कर रहे हैं। उसने ये सारी चीज़ें एक ख़ास मक़सद के तहत बनाईं और इसका मक़सद था इस दुनिया में इन्सानों और जिन्नों को बसाना। अल्लाह तआला ने इन्सानों और जिन्नों को सिर्फ़ अपनी इबादत के लिये पैदा किया और जन्नत व जहन्नम भी उन्हीं के लिये बनाई।

हर नफ़्स को एक दिन मौत का मज़ा चखना है। बाबा आदम (अलैहिस्सलाम) से लेकर अब तक दुनिया में अरबों इन्सान आए। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने अपने ख़ुदा होने का दावा किया, मगर कोई भी मौत के चंगुल से बच न सका। इसलिये जहा तक हो सके हमें अच्छे अमल करने चाहिये और गुनाहों से बचना चाहिये।

अल्लाह तआला हम सबको नेक अमल करने की तौफ़ीक़ दे और कुफ़्र व शिर्क से बचाए। बाद मरने के जन्नतुल फ़िरदौस में जगह नसीब फ़र्माए और जहन्नम की आग से अपनी पनाह में रखे, आमीन!!

मुहम्मद इल्यास मालपुरी

10 सितम्बर 2009 (20 रमज़ान 1430 हिजरी)

जनाज़े के मसाइल

मुख़्तसर अहकाम :

जब कोई शख़्स मौत के क़रीब हो तो सुन्नत है कि उसको क़िब्ले की तरफ़ मुतवज्जह कर दें। यानी दाईं करवट पर इस तरह लिटाएं कि उसका मुँह क़िब्ले की तरफ़ हो और अगर किसी वजह से इस तरह न लिटा सकें तो चित्त लिटाएं, इस तरह कि उसके पैर क़िब्ले की तरफ़ हों और सर के नीचे तकिया रखकर ऊँचा कर दें ताकि मुँह क़िब्ले की तरफ़ हो जाए। इस तरह लिटाने में भी सुन्नत अदा हो ज़ाएगी। अगर क़िब्ला–रुख़ लिटाने में मरीज़ को तकलीफ़ होती हो तो वो जिस हालत में हो उसी हालत पर छोड़ दें।

उसको कलिम–ए–तय्यिबा **'ला इलाहा इल्ललल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'** की तल्क़ीन करें यानी उसके पास बैठकर ये कलिमा बा–आवाज़े बुलन्द पढ़ते रहें कि वो सुने और उसे ये कलिमा याद आ जाए और उसको कहें मगर ठहर–ठहरकर इत्मीनान के साथ कहें, लगातार देर तक न कहते रहें और न ही चिल्लाकर शोरो–गुल के साथ कहें क्योंकि जाँ–कनी का वक़्त मरीज़ पर बहुत नाज़ुक होता है। ऐसा न हो कि परेशान होकर वो ज़बान से और बात निकाले या उसके दिल को उससे नफ़रत हो।

मरीज़ जब एक बार **'ला इलाहा इल्ललल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'** कहे तो फिर उसको तल्क़ीन की ज़रूरत नहीं। हाँ! अगर इस कलिमे के बाद अगर कोई दूसरी बात बोले तो उसको फिर याद–देहानी करानी चाहिये कि वो कलिमे को फिर कहे और उसका आख़री कलिमा **'ला इलाहा इल्ललल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'** हो।

हज़रत मुआज़ (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जिस शख़्स का आख़री कलाम ला इलाहा इल्ललल्लाह हो वो जन्नत में दाख़िल होगा।' (अबू दाऊद)

हज़रत अबू ज़र (रज़ि.) से रिवायत है कि आप (ﷺ) ने इर्शाद फ़र्माया,

'जिस बन्दे ने लाइलाहा इल्ललल्लाह कहा, फिर उसी पर मर गया तो वो जन्नत में दाख़िल होगा।' (मुस्लिम)

जब रूह क़ब्ज़ हो जाए तो मय्यित की आँखें बन्द कर दी जाएं और हाथ–पैर सीधे कर दिये जाएं और पूरा बदन कपड़े से ढाँक दिया जाए। मय्यित के लिये और अपने लिये दुआ व अस्तग़फ़ार करें और कोई बुरा कलिमा ज़बान से न निकालें क्योंकि उस वक़्त जो

कुछ कहा जाता है, फ़रिश्ते उस पर आमीन कहते हैं।

हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) अबू सलमा (रज़ि.) पर दाख़िल हुए और उनकी आँखें खुली हुई थीं तो आप (ﷺ) ने उनको बन्द कर दिया। पस उनके घरवाले बाज़ लोग रोने चिल्लाने लगे। आप (ﷺ) ने फ़र्माया, '**अपनी जानों के वास्ते नेक दुआ करने के बजाय बद् दुआ न करो, इस वास्ते कि जो तुम लोग कहते हो, उस पर फ़रिश्ते आमीन कहते हैं।**'

मय्यित पर नौहा करना और ज़ोर–ज़ोर से रोना–चिल्लाना बड़ा गुनाह है। आहिस्ता–आहिस्ता रोने और आँसू बहाना मना नहीं। हज़रत इब्ने उमर (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने इर्शाद फ़र्माया,

'**मय्यित वालों के नौहा करने और ज़ोर–ज़ोर से रोने की वजह से मय्यित को अज़ाब किया जाता है।**' (बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अबू मूसा अशअरी रिवायत करते हैं कि आप (ﷺ) ने इर्शाद फ़र्माया,

'**मैं उस शख़्स से बे–ज़ार (विरक्त) हूँ जो मुसीबत के वक़्त सर मुण्डाए और चिल्लाकर रोए और कपड़ों को फाड़े।**' (बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.) से रिवायत है कि आप (ﷺ) ने फ़र्माया,

'**वो शख़्स हम में से नहीं (यानी मुस्लिम नहीं) जो अपने गालों को पीटे और गिरहबान को फाड़े और जाहिलियत की पुकार पुकारे (यानी रोने के वक़्त ज़बान से ऐसी बातें निकाले जो जाहिलियत के ज़माने में काफिर लोग कहा करते थे)।**'
(बुख़ारी, मुस्लिम)

अल्लाह तआला तमाम मुस्लिमों को मौत के सदमे के वक़्त सब्रे–जमील की तौफ़ीक़ बख़्शे और बे–सब्री के तमाम कामों से बचाए, आमीन!!

नागहानी (अचानक) मौत :

नागहानी मौत के बारे में मुख़्तलिफ़ रिवायतें आई हैं। बाज़ से मालूम होता कि ये अच्छी नहीं। हज़रत उबैद बिन ख़ालिद (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने इर्शाद फ़र्माया,

'**नागहानी मौत ग़ज़ब की पकड़ है।**' (अबू दाऊद)

बाज़ रिवायतों से मालूम होता है कि नागहानी मौत अच्छी है। इब्ने अबी शैबा (रज़ि.) ने अपनी मुस्निफ़ में हज़रत इब्ने मस्ऊद (रज़ि.) और हज़रत आइशा (रज़ि.) से रिवायत की है कि '**नागहानी मौत मोमिन के वास्ते राहत है और फ़ाजिर के लिये ग़ज़ब है।**' (इब्ने अबी शैबा)

उलम–ए–हदीष़ ने इन हदीष़ों में इस तरह जमा व तौफ़ीक़ बयान की है कि जो शख़्स मौत से ग़ाफ़िल न हो और हर वक़्त मरने के लिये तैयार रहता हो, उसके लिये नागहानी मौत अच्छी है और जो शख़्स ऐसा न हो उसके लिये अच्छी नहीं। वल्लाहु अअ़लम!

मौत के कौन–कौन से दिन अच्छे हैं :

जुम्आ के दिन और जुम्अ़े की रात में मौत बहुत अच्छी है। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़म्र (रज़ि.) से रिवायत है कि आप (ﷺ) ने इर्शाद फ़र्माया,

'जो शख़्स जुम्अ़े के दिन या जुम्अ़े की रात मरेगा, अल्लाह उसको क़ब्र के फ़ित्नों से बचाएगा।' (जामेअ़ तिर्मिज़ी पेज नं. 180)

ये हदीष़ अगरचे ज़ईफ़ है लेकिन इसकी ताईद अनेक हदीष़ों से होती है।

दोशंबे (मंगल) के दिन की मौत भी अच्छी है। अल्लाह के रसूल (ﷺ) का इंतक़ाल दोशंबे के दिन हुआ है। इसलिये हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने अपने मर्ज़ुल मौत में दोशंबे के दिन मरने की तमन्ना ज़ाहिर की थी, मगर उनका इंतक़ाल मंगल की रात को हुआ।

क़ब्र में सवाल–जवाब :

क़ब्र में हर एक शख़्स से सवाल होगा मगर चन्द लोग ऐसे होंगे जिनसे सवाल नहीं होगा उनमें से एक वो शख़्स जो शहीद फ़ी सबीलिल्लाह है और दूसरा मुरातब यानी वो शख़्स जो सरहदे इस्लाम की हिफ़ाज़त करे, तीसरा वो शख़्स जिसकी मौत जुम्अ़े के दिन या जुम्अ़े की रात में हुई हो जैसा कि ऊपर तिर्मिज़ी की हदीष़ से मअ़लूम हुआ है। हाफ़िज़ इब्ने हजर ने **'बज़लुल माऊन'** में लिखा है कि जो शख़्स ताऊन (प्लेग) में मुब्तला होकर मरे उससे क़ब्र में सवाल नहीं होगा क्योंकि उसकी मिष़ाल शहीदे फ़ी सबीलिल्लाह है और इसी तरह जो शख़्स उ स जगह पर स़ब्र के साथ ठहरा रहे और भागे नहीं जहाँ ताऊन फैली हुई हो, उससे भी क़ब्र में सवाल नहीं होगा; अगरचे उसकी मौत ताऊन में मुब्तला होकर न भी हुई हो क्योंकि उसकी मिष़ाल मुरातब की है।

शहीद की क़िस्में :

बाज़ मौतें शहादत की मौतें होती है। उन मौतों से मरने वाले को अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने शहीद फ़र्माया है। मौता इमाम मालिक (रह.), अबू दाऊद और निसाई में जाबिर बिन अ़तीक़ (रज़ि.) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'अल्लाह की राह में क़त्ल होने वाले के अ़लावा यानी जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह में शहीद होने वाले के अ़लावा शहादत की सात क़िस्में हैं, (1). जो ताऊन

(प्लेग की बीमारी) से मरा वो शहीद है; (2). जो डूबकर मर गया हो वो शहीद है; (3). जो ज़ातुल जनब से मरा वो शहीद है; (4). जो पेट की बीमारी से मरा वो शहीद है; (5). जो आग में जलकर मरा वो शहीद है; (6). जो दीवार या किसी और चीज़ के नीचे दबकर मरा वो शहीद है; (7). जो ओ़रत बच्चे को जन्म देते वक़्त मरी वो शहीद है।'

नोट : यहाँ यह बता देना भी लाज़मी होगा कि शहादत की मौत उसी सूरत में कही जाएगी जब ये तमाम क़िस्म मौतें क़ुदरती त़ौर पर हुई हों। अगर अगर कोई जान–बूझकर पानी में डूब जाए, जलकर मर जाए या इसी क़िस्म का कोई और अ़मल करे तो उसकी मौत ख़ुदकुशी की मौत है जो कि अ़जाबे–जहन्नम का ज़रिया है। इसके साथ–साथ यह भी याद रखना ज़रूरी है कि मरने वाला मौत के वक़्त ईमान की हालत में हो क्योंकि कुफ़्र व शिर्क की हालत हुई मौत पर यह बशारत लागू नहीं होती।

इब्ने माजा और दारे क़ुत्नी की रिवायत में है कि मुसाफ़िर की मौत शहादत है। इसी त़रह कुछ और त़रीक़ पर हुई मौतों का शहादत की मौत होना हदीषों से षाबित है। लेकिन इन मौतों से मरने वाले 'हुक्मी शहीद' हैं; जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह में मरने वाले यानी अस़ली शहीद और हुक्मी शहीद के बीच जनाज़े के अहकाम के मुतअ़ल्लिक़ कई बातों का फ़र्क़ है। मषलन :–

01. अस़ली शहीद बग़ैर ग़ुस्ल के दफ़न किये जाते हैं जबकि हुक्मी शहीद को ग़ुस्ल देना चाहिये।

02. अस़ली शहीद की जनाज़े की नमाज़ पढ़ने के बारे में मुख़्तलिफ़ हदीषें आई हैं, इसी वजह से इस बारे में अहले इल्म में इख़्तिलाफ़ है। बाज़ कहते हैं कि पढ़नी चाहिये और बाज़ कहते हैं कि नहीं पढ़नी चाहिये। लेकिन हुक्मी शहीद के जनाज़े की नमाज़ बिल इत्तेफ़ाक़ पढ़ना ज़रूरी है।

किसी के इंतक़ाल पर रिश्तेदारों और दोस्तों को ख़बर देना :

क़राबतमन्द और दोस्त व अहबाब को कफ़न–दफ़न और जनाज़े की नमाज़ में शरीक होने के लिये मौत की ख़बर देना जाइज़ है। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने स़हाबा को और स़हाबा ने आपस में एक–दूसरे को मय्यित की ख़बर दी है और अहादीष़ में जो नई की मुमानियत आई है, सो नई से मुत़लक मौत की ख़बर देना मुराद नहीं है बल्कि उस तरह पर मौत की ख़बर देना है

जिस तरह ज़मान–ए–जाहिलियत में दस्तूर था। हाफ़िज़ इब्ने हजर (रह.) ने बुख़ारी की शरह में लिखा है कि 'जाहिलियत में दस्तूर था कि जब कोई मर जाता तो किसी को महलों के दरवाज़ों और बाज़ारों में भेजते, वो गश्त करके बुलन्द आवाज़ में उसके मरने की ख़बर करता।' और निहाया यह है जैसा कि जुज़री वग़ैरह में लिखा है, 'जब कोई शरीफ़ आदमी मर जाता या क़त्ल किया जाता तो क़बीलों में एक सवार को भेजते जो चिल्ला–चिल्लाकर उसकी मौत की ख़बर देता कि फ़लां शख़्स मर गया, फ़लां शख़्स के मरने से अ़रब हलाक हो गया।'

लिहाज़ा मौत की ख़बरे–जाहिलियत के इस तरीक़े पर देना मना व नाजाइज़ है और किसी की मौत की ख़बर उस तरह देना जिस तरह रसूलुल्लाह (ﷺ) ने सहाबा को दी और सहाब–ए–किराम ने आपस में एक–दूसरे को दी, मना नहीं है।

कोई शख़्स मर गया और उसने अपनी बीवी को महर अदा नहीं की.......)

कोई शख़्स मर गया और उसने अपनी बीवी का महर अदा नहीं किया और उसने कुछ माल भी नहीं छोड़ा तो उस सूरत में उसकी बीवी अगर अपना दीनी महर ख़ुशी से माफ़ कर दे ये बड़े षवाब की बात है और उसका यह अ़मल अपने मरने वाले शौहर पर बहुत बड़ा एहसान है। अगर मरने वाला माल छोड़ गया है तो उस सूरत में उसकी ख़्वाम–ख़्वाह माफ़ कराना जाइज़ नहीं बल्कि उस सूरत में उसके वारिषों के लिये लाज़िम है कि मरने वाले की बीवी का महर और दूसरे क़र्ज़ जो उस पर बाक़ी हों, उन्हें फ़ौरन अदा करें।

ग़ुस्ले मय्यित और उसके ऐ़बों को छुपाने का बयान :

शहीद की मय्यित को ग़ुस्ल देना ज़रूरी नहीं है, शहीद को बग़ैर उसके कपड़ों में मय ख़ून के दफ़न करने का हुक्म है। अबू राफ़ेअ़ (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जो शख़्स मय्यित को ग़ुस्ल दे और छुपाए यानी उस बात को छुपाए जो ज़ाहिर करने के क़ाबिल न हो तो उसके चालीस कबीरा गुनाह बख़्शे जाते हैं।' (हाकिम)

हज़रत आइशा (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,
'जो शख़्स मय्यित को ग़ुस्ल देने में अमानत को अदा करे यानी शरीयत के मुताबिक़ ग़ुस्ल दे और कोई मकरूह और नाक़ाबिले ज़िक्र बात उससे मालूम हो तो उसको ज़ाहिर न करे। पस वो शख़्स अपने गुनाहों से ऐसा निकल जाता है कि जैसे उसकी माँ ने आज ही जना था। और चाहिये कि मय्यित को क़राबतमन्द ग़ुस्ल दें, जो रिश्तेदारी में ज़्यादा क़रीब हों बशर्ते कि उनको ग़ुस्ल देने का तरीक़ा मालूम हो और अगर न मालूम हो तो वो लोग ग़ुस्ल दें जो परहेज़गार और

अमानतदार हों।' (अहमद)

इस रिवायत को इमाम अहमद ने रिवायत किया है लेकिन यह हदीष़ ज़ईफ़ है। इन दोनों हदीषों से मालूम हुआ कि मय्यित को ग़ुस्ल देना बड़े ष़वाब का काम है और यह भी मालूम हुआ कि मय्यित को उसके क़राबतदार लोग ग़ुस्ल दें जो रिश्तेदारी में उसके सबसे ज़्यादा क़रीब हों। अगर उनको ग़ुस्ल देने का तरीक़ा मालूम न हो तो दूसरे लोग उसको ग़ुस्ल दें जो दीनदार और परहेज़गार हों।

इमाम मालिक (रह.) अपने मुअत्ता में लिखते हैं कि 'उन्होंने अहले इल्म से सुना है कि जब कोई ओ़रत मर जाए और वहाँ ओ़रतें मौजूद न हों जो उसको ग़ुस्ल दे, और न उसका कोई महरम मौजूद हो और न उसका शौहर मौजूद हो जो उसको ग़ुस्ल दे तो वो ओ़रत तयम्मुम कराई जाए। पस उसके मुँह और दोनों हथेलियाँ पाक मिट्टी से मली जाएं और कोई मर्द मर जाए और वहाँ ओ़रतों के अ़लावा कोई और मौजूद न हो तो ओ़रतें उसको तयम्मुम कराएं।' इस बारे में एक मुर्सल हदीष़ भी आती है।

अबू दाऊद ने अपनी किताब 'मुरासिल' में मकहूल से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया, **'जब कोई ओ़रत मर जाए और मर्दों के सिवा कोई दूसरी ओ़रत न हो और कोई मर्द मरे और ओ़रतों के सिवा दूसरा कोई मर्द मौजूद न हो तो ओ़रत और मर्द को तयम्मुम कराया जाए और दफ़न किये जाएं और वो दोनों बजाय ऐसे शख़्स के हैं जिसको पानी न मिले।'**

शौहर को जाइज़ है कि वो अपनी बीवी को ग़ुस्ल दे। हज़रत आइशा (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया, **'ऐ आइशा! अगर तुम्हारी मौत मुझसे पहले हुई तो मैं तुझे ग़ुस्ल दूँगा और कफ़न पहनाऊंगा और तेरा जनाज़ा पढ़ूंगा और तुझे दफ़न करूंगा।'** (इब्ने माजा, दारे क़ुत्नी, अस्सुनन अल कुबरा लिल बैहक़ी, मुस्नद अबू यअ़ला)

एक दूसरी हदीष़ में है कि सय्यिदा आइशा (रज़ि.) ने फ़र्माया, **'अगर ये बात मुझे पहले याद आ जाती जो मुझे बाद में याद आई है तो रसूलुल्लाह (ﷺ) को उनकी बीवियों के सिवा कोई ग़ुस्ल नहीं देता।'** (इब्ने माजा, मुस्नद अबू यअ़ला, मुस्नद अहमद, अबू दाऊद, अस्सुनन अल कुबरा लिल बैहक़ी, मुस्तदरक हाकिम, मवारिदुल ज़मान, शरहुस्सुन्ना, मुस्नद शाफ़ई)

इसी त़रह बीवी के लिये जाइज़ है कि वो अपने शौहर की मय्यित को ग़ुस्ल दे। क़ाज़ी शौकानी (रह.) हज़रत आइशा की ऊपर वाली हदीष़ की शरह में लिखते हैं, **'इस हदीष़ में दलील है कि ओ़रत जब मर जाए तो उसका ख़ाविन्द उसे ग़ुस्ल दे सकता है और इस दलील से ये भी मालूम हुआ कि ओ़रत भी अपने ख़ाविन्द को ग़ुस्ल**

दे सकती है।' (नैलुल अवतार)

क्योंकि शौहर और बीवी एक–दूसरे के लिये पर्दा हैं। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के इंतक़ाल के बाद उनकी बीवी सय्यिदा अस्मा बिन्त उमैस (रज़ि.) ने गुस्ल दिया था। अब्दुल्लाह बिन अबू बक्र (रज़ि.) से रिवायत है,

'जिस वक़्त हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) का इंतक़ाल हुआ तो हज़रत अस्मा बिन्ते उमैस (रज़ि.) ने उन्हें गुस्ल दिया।' (मुअत्ता इमाम मालिक, अब्दुर्रज़्ज़ाक़, अल अवसत, शरहुस्सुन्ना)

इसी तरह हज़रत अस्मा बिन्ते उमैस (रज़ि.) से रिवायत है,

'बिला शुब्हा सय्यिदा फ़ातिमा (रज़ि.) ने वसिय्यत की कि उन्हें उनके शौहर अली बिन अबी तालिब (रज़ि.) और अस्मा बिन्ते उमैस गुस्ल दें। तो उन दोनों ने सय्यिदा फ़ातिमा (रज़ि.) को गुस्ल दिया।' (दारे कुत्नी, अस्सुनन अल कुबरा लिल बैहक़ी, अब्दुर्रज़्ज़ाक़, शरहुस्सुन्ना, मुस्नद शाफ़ई)

मय्यित को गुस्ल देने वाला ख़ुद गुस्ल करे तो बेहतर है और अगर गुस्ल न करे तो कुछ हर्ज नहीं। और इसी त़ रह अगर मय्यित को उठाने वाला फिर से वुज़ू करे तो बेहतर है और अगर फिर से वुज़ू न करे तो कुछ हर्ज नहीं। हनफ़ी फुक़हा के नज़दीक भी गुस्ल देने वाले को गुस्ल कर लेना मुस्तहब है।

मय्यित को गुस्ल देने का बयान :

मय्यित को गुस्ल देने का इरादा करें उसके कपड़े उतार दें, मगर बदन का जितना हिस्सा ज़िन्दगी की हालत में छुपाना ज़रूरी है उसको बे–सतर (नंगा) न करें। बेहतर यह है कि उसके सतर की जगहों पर कोई चादरनुमा कपड़ा डाल दें। फिर हाथ में कपड़ा लपेटकर उसका इस्तिञ्जा कराएं और बदन पर कहीं नजासत हो तो उसको भी पाक करें। फिर वुज़ू कराएं और सर और दाढ़ी में अगर बाल हों तो ख़त्मी से या किसी और साफ़ करने वाली चीज़ से धोएं। फिर तीन बार पानी और बेरी के पत्तों से गुस्ल दें और आख़री बार पानी में काफ़ूर (कपूर) मिलाएं। अगर तीन बार से ज़्यादा गुस्ल देने की ज़रूरत मालूम हो तो पाँच गुस्ल दें या पाँच बार से भी ज़्यादा मगर ताक़ (विषम संख्या) होना चाहिये। गुस्ल देने में दाहिनी तरफ़ से शुरू करें। बुख़ारी और मुस्लिम में उम्मे अतिया (रज़ि.) से रिवायत है कि **हम रसूलुल्लाह (ﷺ) की बेटी को गुस्ल दे रही थीं, इस हालत में कि रसूलुल्लाह (ﷺ) हम पर दाख़िल हुए और फ़र्माया कि उनको गुस्ल दो; पानी और बेरी के पत्तों से तीन बार, या पाँच बार या ज़्यादा अगर तुमको ज़रूरत मालूम हो, और गुस्ल के अख़ीर में काफ़ूर डालो और एक रिवायत में है कि उनको दाहिनी तरफ़**

से और वुज़ू की जगहों से शुरू करो।

नर्मी और आहिस्तगी से गुस्ल दें और मय्यित से कोई मकरूह या ऐबवाली बात मालूम हो तो उसको छुपाएं और किसी से ज़ाहिर न करें। जिस मक़ाम पर मय्यित को गुस्ल दें, वहाँ पर्दा कर लें। हज़रत इब्ने उमर (रज़ि.) से रिवायत है कि जो शख़्स किसी मुसलमान की पर्दापोशी करेगा, अल्लाह तआला क़यामत के दिन उसकी पर्दापोशी करेगा।

मर्दों के कफ़ने–मसनून का बयान :

मर्दों के वास्ते मसनून कफ़न तीन कपड़े हैं। वो तीन लिफ़ाफ़े हैं यानी तीन चादरें जो इस क़दर लम्बी और चौड़ी हों जिनमें मय्यित को ख़ूब अच्छी तरह लपेट सकें और क़दम तक बख़ूबी छुप जाएं।

मर्दों के कफ़नाने का तरीक़ा :

कफ़नाने से पहले मय्यित को हनूत लगाएं। (हनूत एक मुरक्कब/मिश्रित ख़ुश्बू का नाम है जो ख़ास मर्दों के बदन और कफ़न में लगाने के वास्ते बनाई जाती है। हमारे मुल्क भारत में हनूत नहीं मिलता लिहाजा उसके बजाय कोई भी इत्र इस्तेमाल करना चाहिये और अगर मुश्क (कस्तूरी) मिल सके तो उसको भी हनूत के बजाय इस्तेमाल करना जाइज़ है। सलमान फ़ारसी (रज़ि.) ने हुक्म किया था कि जब मैं मर जाऊँ ता मुझे मुश्क लगाना। (कज़ाबी अद् दारिया : 141) और हज़रत अली ने वसीयत की थी कि मेरे पास जो मुश्क मौजूद है उसी मुश्क को बजाय हनूत के इस्तेमाल करना और कहा कि ये मुश्क रसूलुल्लाह के हनूत का फ़ुज़ला है। (कज़ाबी अत् तलख़ीस पेज नं. 154)

और अगर हनूत मौजूद न हो तो इत्र या कोई और ख़ुश्बू इस्तेमाल करना चाहिये। और किसी ख़ुश्बूदार चीज़ मष़लन अगरबत्ती या लोबान को जलाकर उसके धुँए से कफ़न को बसाना और धूनी देना भी आया है। मुस्नद अहमद में हज़रत जाबिर (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया जब तुम लोग मय्यित को धूनी दो तीन मर्तबा दो। और बैहक़ी की रिवायत में है कि मय्यित के कफ़न तीन बार धूनी दो। और सज्दे की जगहों पर काफ़ूर मलना चाहिये। हज़रत इब्ने मस्ऊद ने फ़र्माया कि मवाज़िअ सुजूद (यानी दोनों हथेलियों और नाक और पैशानी और दोनों रानों, ज़ानू और दोनों क़दमों के अगले हिस्से) पर काफ़ूर मलना चाहिये। इसको इब्ने अबी शैबा और बैहक़ी ने रिवायत किया है।

मर्दों को तीन लिफ़ाफ़े में कफ़नाना हो तो उसका तरीक़ा यह है कि तीनों लिफ़ाफ़े एक–दूसरे पर बिछाएं, फिर मय्यित को उन पर चित्त लिटाएं, फिर ऊपर के लिफ़ाफ़े को दाहिनी तरफ़ को पहले लपेटें ताकि कफ़न का लपेटना दाहिनी तरफ़ से शुरू हो फिर बाँयीं तरफ़ को लपेटें। फिर नीचे के बाक़ी दोनों लिफ़ाफ़ों को लपेटें। हनफ़ी फ़ुक़हा लिखते हैं

पहले बाँयीं तरफ़ तरफ़ को लपेटें, फिर उसके बाद दाहिनी तरफ़ को लपेटें ताकि कफ़न की दाहिनी तरफ़ ऊपर पड़े। फिर सर व पाँवों की तरफ़ कफ़न को गिरह (गाँठ) दें ताकि कफ़न बिखरने और खुलने न पाए। जब मय्यित को लहद (क़ब्र) में रखें तो उनकी दोनों गिरहों को खोल दें। अगर मर्दों को कुर्ते और लिफ़ाफ़े में कफ़नाना हो तो उसका तरीक़ा यह है कि पहले लिफ़ाफ़े को बिछाएं, फिर उस पर इज़ार बिछाएं; फिर मय्यित को पहले कुर्ता पहनाकर इज़ार लपेटें, फिर लिफ़ाफ़ा लपेटें। फिर सर और पाँव की तरफ़ गिरह लगा दें, जैसा कि अभी मालूम हुआ।

औरत के कफ़ने–मसनून का तरीक़ा :

कफ़नाने से पहले मर्द की तरह औरत के सज्दे की जगहों पर भी काफ़ूर मलना चाहिये और हुनूत या इत्र वग़ैरह का इस्तेमाल करना चाहिये। औरत के सर के बालों की तीन चोटियाँ बनाकर पीछे डाल देना चाहिये। सर के आगे के बालों की एक चोटी बनाई जाए और सर के दोनों तरफ़ के बालों की दो चोटियाँ बनाई जाएं। औरत के कफ़न को भी किसी ख़ुश्बूदार चीज़ अगरबत्ती या लोबान से धूनी दी जाए।

औरत को पहले तहबन्द में लपेटें और तहबन्द को ज़िन्दा की तरह कमर से न बाँधें बल्कि बग़ल से लेकर सीने और कमर और रान वग़ैरह बदन के जिस क़दर हिस्से पर लपेट सकें लपेटें। फिर कुर्ता पहनाएं, फिर ख़िमार या सरबन्द से उसके सर के बालों को छुपाएं। फिर दोनों लिफ़ाफ़ों में लपेटें, फिर सर और पैर की तरफ़ कफ़न को गिरह कर दें।

जनाज़ा उठाने और उसके साथ चलने के बयान में :

जनाज़े के उठाने में किसी क़िस्म की कुछ क़बाहत नहीं है। ख़ुद हुज़ूर रसूलुल्लाह (ﷺ) ने जनाज़ा उठाया है (यानी जनाज़े को काँधा दिया है) और बड़े–बड़े जलीलुलक़द्र सहाबा, ताबेईन और अइम्म–ए–दीन ने जनाज़ा उठाया है। पस जो शख़्स जनाज़े को उठाने में क़बाहत समझे, वो बिला शुब्हा ज़ईफ़ुल ईमान (कमज़ोर ईमान वाला) है।

जनाज़े के साथ चलना, मुसलमानों के उन हुक़ूक़ में से एक हक़ है, जो एक–दूसरे पर वाजिब हैं। इसके अलावा यह बात भी ध्यान रखने लायक़ है कि जनाज़े के साथ चलने में बहुत ष़वाब है। हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'मुसलमानों में आपस में एक–दूसरे पर पाँच हक़ वाजिब हैं, सलाम का जवाब देना, मरीज़ की अयादत करना, जनाज़े के साथ चलना, दअ़वत का क़ुबूल करना, छींकने वाले का जवाब देना।' (बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जो शख़्स ईमान का काम समझकर, ष़वाब हासिल करने की निय्यत से किसी

मुसलमान के जनाज़े के साथ जाए और बराबर उसके साथ रहे यहाँ तक कि उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़े और उसके दफ़न से फ़ारिग़ हो तो वो दो क़ीरात ष़वाब लेकर लौटेगा, हर क़ीरात उहुद पहाड़ के बराबर होगा और जो शख़्स जनाज़े की नमाज़ पढ़कर दफ़न से पहले ही लौट आएगा वो एक क़ीरात ष़वाब लेकर लौटेगा।' (बुख़ारी, मुस्लिम)

सुब्हान अल्लाह! जनाज़े के साथ जाने में कितना बड़ा ष़वाब है। मगर बहुत से मुसलमान अपनी ग़फ़लत की वजह से इतने बड़े ष़वाब से अपने आप को महरूम रखते हैं।

जनाज़े के आगे–पीछे या बराबरी में चलना :

जनाज़े के साथ जाने वालों को जनाज़े के आगे–पीछे, दाँये–बाँये हर तरफ़ चलना जाइज़ है। रही बात कि अफ़ज़ल क्या है, जनाज़े के आगे चलना या पीछे चलना? उसका जवाब आगे आ रहा है।

जनाज़े के साथ जाने वालों को जनाज़े से न ज़्यादा आगे रहना चाहिये न ज़्यादा पीछे बल्कि जनाज़े के क़रीब–क़रीब चलना चाहिये। मुग़ीरा बिन शोअबा (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने इर्शाद फ़र्माया,

'सवार जनाज़े के पीछे चलें, और पैदल जनाज़े के आगे–पीछे, दाँये–बाँये, क़रीब–क़रीब चलें।' (अबू दाऊद)

जनाज़े को उठाने का तरीक़ा :

जनाज़े को उठाने का तरीक़ा यह है कि जनाज़े की चारपाई के चारों किनारों को चार शख़्स काँधे पर उठाएं। इब्ने माजा में हज़रत इब्ने मस्ऊद (रज़ि.) से रिवायत है कि उन्होंने कहा जो शख़्स जनाज़े के साथ चले तो उसको चाहिये कि चारपाई के चारों जानिब को उठाए क्योंकि ये सुन्नत है। फिर अगर चाहे तो ष़वाब हासिल करे और अगर चाहे तो छोड़ दे। हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि.) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) फ़र्माते थे,

'जो शख़्स जनाज़े के साथ चला और उसको तीन बार उठाया तो जो उसके ज़िम्मे था उसको पूरा किया।' (तिर्मिज़ी)

इस हदीष़ को अब्दुर्रज़्ज़ाक़ ने इस तरह रिवायत किया है, **'जिस शख़्स ने जनाज़े को उसके चारों तरफ़ से उठाया, तो उसने पूरा किया जो उसके ज़िम्मे था।'**

इन हदीष़ों से यह मालूम हुआ कि जनाज़े के साथ चलने वालों को कम अज़ कम एक–एक बार जनाज़ा चारों तरफ़ से उठाना चाहिये। उलम–ए–दीन लिखते हैं कि जनाज़े को इस तरह चारों तरफ़ से उठाने की सूरत ये है कि पहले जनाज़े के सर के दाहिने तरफ़ को अपने दाहिने काँधे पर उठाए और कुछ दूर लेकर चले, फिर पायताने के दाहिनी तरफ़ को

अपने दाहिने काँधे पर उठाए और कुछ दूर चले। फिर जनाज़े के सर के बाँये तरफ़ को अपने बाँये काँधे पर उठाए और कुछ दूर तक चले, फिर पायताने के बाँयी तरफ़ को अपने बाँये काँधे पर उठाए और कुछ दूर चले।

जनाज़े को सरअत और तेज़ी के साथ ले चलने का हुक्म :

जनाज़े को सरअत और तेज़ी के साथ लेकर चलने का हुक्म है। अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जनाज़े को तेज़ी के साथ ले चलो।' (बुख़ारी, मुस्लिम)

फ़ायदा मुतफ़र्रिक़ा :

जनाज़े के साथ पैदल चलने वालों को जनाज़े के आगे–पीछे, दाँये–बाँये हर तरफ़ चलना जाइज़ है लेकिन इसमें उलमा का इख़्तिलाफ़ है कि आगे चलना अफ़ज़ल है कि पीछे चलना। इमाम मालिक (रह.), इमाम शाफ़ई (रह.), इमाम अहमद (रह.) और जम्हूर उलमा का मज़हब है कि जनाज़े के आगे चलना अफ़ज़ल है और इमाम ष़ौरी का मज़हब है कि जनाज़े के आगे–पीछे हर तरफ़ चलना बराबर है। किसी तरफ़ को किसी तरफ़ पर फ़ज़ीलत नहीं है। स़हीह़ बुख़ारी से मालूम होता है कि इमाम बुख़ारी (रह.) का भी यही मज़हब था।

जनाज़े में नमाज़ से पहले खड़े होकर बैठना :

इमाम मालिक और अबू दाऊद की रिवायत में है कि आप जनाज़े में खड़े हुए और फिर बाद में बैठे। मुस्नद अहमद में यह हदीष़ दूसरे अल्फ़ाज़ में मरवी है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने हमको जनाज़े के बारे में खड़े होने का हुक्म फ़र्माया था, फिर बाद में आप (ﷺ) बैठे और हमको बैठने का हुक्म फ़र्माया। बाज़ अहले इल्म कहते हैं कि जनाज़े को देखकर जनाज़े को देखकर खड़े होने का ये हुक्म मन्सूख़ नहीं है बल्कि ये हुक्म बाक़ी है। हाँ! ज़रूरी नहीं है। वल्लाहु अअ़लम!!

नमाज़े जनाज़ा के बयान में :

नमाज़े जनाज़ा के वास्ते वुज़ू ज़रूरी है जैसा कि और नमाज़ों के लिये ज़रूरी है और जिन–जिन सूरतों में और नमाज़ों के लिये तयम्मुम करना जाइज़ है उन्हीं सूरतों में नमाज़े जनाज़ा के लिये भी तयम्मुम करना जाइज़ है। लेकिन उलम–ए–सलफ़ की एक जमाअ़त ने नमाज़े जनाज़ा के वास्ते इस हालत में भी तयम्मुम को जाइज़ रखा है जबकि वुज़ू करने में नमाज़े जनाज़ा के फ़ौत होने का ख़ौफ़ हो।

मस्जिद में नमाज़े जनाज़ा पढ़ना जाइज़ है :

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) के जनाज़े की नमाज़ भी मस्जिद में पढ़ी

गई है मगर मस्जिद में नमाज़े जनाज़ा पढ़ने की आदत नहीं करनी चाहिये बल्कि नमाज़े जनाज़ा के वास्ते मस्जिद के अलावा कोई और जगह मुक़र्रर करनी चाहिये। जैसा कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) के ज़माने में मस्जिदे नबवी के अलावा एक ख़ास जगह नमाज़े जनाज़ा के लिये मुक़र्रर थी।

नमाज़े जनाज़ा के अवक़ात :

बाद नमाज़े अस्र और बाद नमाज़े फ़ज्र जनाज़ा पढ़ना जाइज़ है। हाँ! सूरज के तुलूअ होने के वक़्त, गुरूब होने के वक़्त और ठीक दोपहर को जब सूरज सर पर हो, उस वक़्त नमाज़े जनाज़ा नहीं पढ़नी चाहिये।

नमाज़े जनाज़ा जूते चप्पल पहनकर या निकालकर पढ़ें :

नमाज़े जनाज़ा चाहे जूते पहनकर पढ़ें या निकालकर पढ़ें, दोनों तरह से जाइज़ व दुरुस्त है। जूते पहनकर पढ़ना चाहें तो जूतियों को उलटकर देख लें अगर नापाकी लगी हुई हो तो ज़मीन पर रगड़ डालें ताकि पाक व साफ़ हो जाएं और निकालकर पढ़ना चाहें तो जूतियों को अपने दोनों पैरों के बीच में रखें। अपने आगे और दाहिनी तरफ़ न रखें। अगर बाँयीं तरफ़ कोई आदमी न हो तो बाँयीं तरफ़ रखना दुरुस्त है। नमाज़े जनाज़ा के अलावा और नमाज़ों को भी जूती पहने हुए पढ़ना दुरुस्त है। हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने इर्शाद फ़र्माया,

'जब कोई शख़्स मस्जिद में आए तो अपनी जूतियों को देखे अगर उनमें नापाकी मालूम हो तो उनको ज़मीन पर रगड़ डाले फिर उनको पहनकर नमाज़ पढ़े।'

(अबू दाऊद)

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि.) से रिवायत है,

'मरे हुए बच्चे या बच्ची पर न नमाज़े–जनाज़ा पढ़ी जाए और न वो मीराष़ पाए और न कोई दूसरा उससे मीराष़ पाए यहाँ तक कि वो आवाज़ दे।'

(तिर्मिज़ी, निसाई, इब्ने माजा)

मालिक बिन हबीरा (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जिस मय्यित पर तीन सफ़ों ने नमाज़ पढ़ी, अल्लाह तआला ने उसकी मग़्फ़िरत वाजिब कर ली।' (अबू दाऊद)

और हाकिम की रिवायत है कि अल्लाह तआला ने उसकी मग़्फ़िरत की। तिर्मिज़ी ने इस हदीष़ को हसन कहा है और हाकिम ने इसे सह़ीह़ बताया है।

जनाज़े को देखकर खड़े हो जाना :

हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि.) से रिवायत है कि हमारे सामने से एक जनाज़ा गुज़रा तो नबी करीम (ﷺ) खड़े हो गये। फिर हमने कहा, 'या रसूलुल्लाह (ﷺ)! ये तो यहूदी का जनाज़ा था।' आप (ﷺ) ने फ़र्माया, 'जब तुम लोग जनाज़े को देखो तो खड़े हो जाया करो।' (बुख़ारी)

आप (ﷺ) का यहूदी के जनाज़े के लिये भी खड़े हो जाना ज़ाहिर करता है कि आप (ﷺ) के क़ल्बे–मुबारक में महज़ इन्सानियत के रिश्ते के आधार पर इन्सानों से किस क़दर मुहब्बत थी। जान के मामले में मुसलमान और ग़ैर– मुस्लिम बराबर हैं। ज़िन्दगी और मौत दोनों पर वारिद होती हैं। इस हदीष़ में तफ़्सील मौजूद है कि जब सहाबा ने कहा कि ये यहूदी का जनाज़ा था तो आप (ﷺ) ने फ़र्माया, **'कुछ भी हो बेशक मौत बहुत ही घबराहट में डालने वाली चीज़ है।'**

मौत किसी की भी हो उसे देखकर घबराहट होनी चाहिये। पस जब भी तुम किसी का जनाज़ा देखो खड़े हो जाया करो। निसाई और हाकिम में हज़रत अनस (रज़ि.) की हदीष़ में है कि हम फ़रिश्तों की ता'ज़ीम के लिये खड़े होते हैं।

पस ख़ुलास–ए–कलाम यह है कि जनाज़े को देखकर मज़हब का फ़र्क़ किये बिना इबरत हासिल करने, मौत को याद करने के लिये और फ़रिश्तों की ता'ज़ीम के लिये खड़े हो जाना चाहिये।

मय्यित का चारपाई पर बात करना :

रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया, **'जब जनाज़ा तैयार हो जाए और जब मर्द उसको अपनी गर्दनों पर उठा लेते हैं तो अगर मरने वाला नेक है तो कहता है कि मुझे आगे ले चलो। अगर नेक नहीं है तो कहता है, हाय! अफ़सोस मुझे कहाँ लेकर जा रहे हो? इस आवाज़ को इन्सान और जिन्नों के सिवा तमाम मख़्लूक़े खुदा सुनती है।'** (बुख़ारी)

जनाज़ा उठाते वक़्त अल्लाह पाक मय्यित को बरज़ख़ी ज़बान अता कर देता है। अगर वो जन्नती है तो जन्नत के शौक़ में कहता है मुझे जल्दी–जल्दी ले चलो ताकि जल्दी अपनी मुराद को हासिल करूँ। अगर वो दोज़ख़ी है तो फिर घबराहट से कहता है हाय! मुझे कहाँ ले जा रहे हो? उस वक़्त अल्लाह पाक उनको इस तौर पर मख़्फ़ी तरीक़े से बोलने की ताक़त देता है और उस आवाज़ को इन्सानों और जिन्नों के अलावा तमाम मख़्लूक़ सुनती है।

नमाज़े जनाज़ा पढ़ने का तरीक़ा :

नमाज़े जनाज़ा पढ़ने का तरीक़ा यह है कि मय्यित अगर मर्द की हो तो इमाम उसके सर के

पास खड़ा हो और अगर औरत की है तो इमाम उसके कमर के पास खड़ हो और मुक्तदी लोग उसके पीछे सफ़ बाँधकर खड़े हों। बेहतर यह है कि तीन सफ़ कर लें। फिर इमाम और नमाज़ों की तरह अपने दोनों हाथों को मोंढ़ों तक उठाए और बा–आवाज़ बुलन्द 'अल्लाहु अक्बर' कहे और हाथ बाँध ले (और दुआ–ए–षना, अऊज़ुबिल्लाह व बिस्मिल्लाह पढ़े जो और नमाज़ों में पढ़ी जाती है) इसके बाद सूरह फ़ातिहा पढ़े और कोई सूरत पढ़े (मषलन सूरह इख़्लास); फिर बा–आवाज़ बुलन्द अल्लाहु अक्बर कहकर रफ़यउलयदैन करें और फिर दरुद शरीफ़ पढ़ें (जो आम नमाज़ों में पढ़ी जाती है); उसके बाद फिर रफ़यउलयदैन करते हुए बुलन्द आवाज़ में अल्लाहु अक्बर कहते हुए उन दुआओं में से कोई दुआ पढ़े जो आगे लिखी जा रही है। फिर बुलन्द आवाज़ में अल्लाहु अक्बर कहते हुए पहले दाँये तरफ़ फिर बाँये तरफ़ सलाम फेर दें। मुक़्तदी भी ठीक इसी तरह करें।

जब कई जनाज़े एक साथ जमा हों :

जब कई जनाज़े एक साथ जमा हों तो हर एक के लिये अलग–अलग नमाज़ पढ़ने की ज़रूरत नहीं है बल्कि सबके लिये एक ही नमाज़ पढ़ना काफ़ी है। पस अगर मर्द और औरतों के जनाज़े एक साथ जमा हों तो मर्द के जनाज़े इमाम के क़रीब रखें और लड़कों व औरतों के जनाज़े को पीछे क़िब्ले की तरफ़ रखें। अगर लड़कों और औरतों के जनाज़े जमा हों तो लड़कों के जनाज़े इमाम के क़रीब और औरतों के जनाज़े उनके पीछे क़िब्ले की तरफ़ रखें।

पस जब कई जनाज़े जमा हों तो अगर चाहे तो हर मय्यित पर अलग–अलग नमाज़ पढ़ें और चाहे तो सभी पर एक ही नमाज़ पढ़ें। मुर्दों को रखने में भी इख़्तियार है। चाहें तो उनको एक लाइन में रखें और जो उनमें अफ़ज़ल हो उसके पास खड़े हुआ जाए और चाहे तो उनको क़िब्ले की तरफ़ एक के पीछे एक को रखें और उन मुर्दों के रखने की तर्तीब इमाम के ऐतबार से वही है जो हालते ज़िन्दगी में इमाम के पीछे थी। पस जो अफ़ज़ल हो उसे इमाम के क़रीब रखा जाए और दूसरों को इमाम से दूर क़िब्ले की जानिब रखा जाए। जब मर्द और लड़कों के जनाज़े जमा हों तो मर्द इमाम की तरफ़ और लड़कों को क़िब्ले की तरफ़ किया जाए। अगर उन दोनों के साथ ख़नसी हों तो उनको लड़कों के पीछे रखा जाए। पस इमाम के क़रीब मर्दों की सफ़ बाँधी जाए, फिर लड़कों की, फिर ख़नसी की, फिर औरतों की।

फ़ासिक़ और बदकार मुसलमान के जनाज़े की नमाज़ :

फ़ासिक़ और बदकार मुसलमान के जनाज़े की नमाज़ पढ़नी चाहिये मगर अहले इल्म और मुक़्तदा लोग न पढ़ें बल्कि और लोगों को कह दें कि पढ़ लें। ज़ैद बिन ख़ालिद जुहनी से रिवायत है कि मुसलमानों में एक शख़्स ख़ैबर में मर गया, उसके मरने की ख़बर रसूलुल्लाह (ﷺ) को दी गई; आप (ﷺ) ने फ़र्माया कि इसके जनाज़े की नमाज़ तुम लोग पढ़ लो। आप (ﷺ) के इस फ़र्मान को सुनकर लोगों के चेहरों का रंग बदल गया और वे तअज्जुब में

पड़ गये। आप (ﷺ) ने जब लोगों के चेहरे की यह हालत देखी तो फ़र्माया कि इस शख़्स ने अल्लाह की राह में चोरी की है यानी माले ग़नीमत में से चोरी की है। इस हदीष़ को अबू दाऊद, निसाई और इब्ने माजा ने रिवायत किया है।

अगर जनाज़े की नमाज़ पूरी न मिले तो :

जनाज़े की नमाज़ अगर पूरी न मिले तो दूसरी और नमाज़ों की तरह जिस क़दर इमाम के साथ मिले उसको इमाम के साथ पढ़ लें और जिस क़दर छूट गई हो उसको इमाम के सलाम फेरने के बाद पूरी कर ले क्योंकि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया है, **'मा अद्‌रक्तुम फ़स़ल्लू औ माफ़तकुम फ़अतिम्मू** (तर्जुमा) **जो नमाज़ इमाम के साथ पाओ, उसको पढ़ लो और जो फ़ौत हो गई हो उसको पूरी कर लो।'** आप (ﷺ) का यह हुक्म नमाज़े जनाज़ा के लिये भी शामिल है। मोता इमाम मालिक में है कि इमाम मालिक ने ज़ुहरी से पूछा कि कोई शख़्स नमाज़े–जनाज़ा की बाज़ तकबीरों को पाए और बाज़ तकबीरें फ़ौत हो जाएं तो क्या करे? उन्होंने फ़र्माया कि जो तक्बीरें फ़ौत हो जाए उसको क़ज़ा कर ले।

जिस मय्यित पर नमाज़े जनाज़ा न पढ़ी गई हो :

जिस मय्यित पर जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ी गई और यूँ ही बिला नमाज़े जनाज़ा के दफ़न कर दिया गया हो तो उसकी क़ब्र पर जनाज़े की नमाज़ पढ़ना जाइज़ व दुरुस्त है और इसके लिये किसी ख़ास़ मुद्दत की हद व तअय्युन (निर्धारण) षाबित नहीं है।

क़ब्र कैसी हो?

क़ब्र दो क़िस्म की खोदी जाती है। एक बग़ली औद दूसरी स़न्दूक़ी; बग़ली उसको कहते हैं जिस में मय्यित के रखने की जगह क़िब्ले की दीवार में ज़मीन से लगाकर खोदी जाती है। इसको अ़रबी लहद कहते हैं। और स़न्दूक़ी उसको कहते हैं कि जिसमें मय्यित को रखने की जगह बीच में बनाई जाती है, इसको अ़रबी में शक़ कहते हैं। बग़ली और स़न्दूक़ी दोनों क़िस्म की क़ब्र बनाना जाइज़ है मगर बग़ली ऊला और अफ़ज़ल है। रसूलुल्लाह (ﷺ) की क़ब्र बग़ली बनाई गई थी।

दोनों क़िस्म की क़ब्र में मय्यित रखने की जगह ख़ूब कुशादा होनी चाहिये कि वो उसमें बा–फ़राग़त बिला तंगी के रख दिया जाए। क़ब्र खोदने में बहुत एहतियात करनी चाहिये; मुर्दे की कोई हड्डी निकले तो टूटने न पाए, जो हड्डी निकले उसको हिफ़ाज़त के साथ फिर उसी क़ब्र में दफ़न कर देना चाहिये। हज़रत आ़इशा (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'मुर्दे की हड्डी का तोड़ना ऐसा है जैसे ज़िन्दा की हड्डी का तोड़ना।' (अबू दाऊद)

मुर्दे को कितने लोग क़ब्र में रखें :

मुर्दे को लहद में रखने के वास्ते ज़रूरत के मुताबिक़ दो या तीन आदमी क़ब्र में दाख़िल हों। रसूलुल्लाह (ﷺ) की क़ब्र में चार आदमी दाख़िल हुए थे। औरत की क़ब्र में उसके महरम लोग दाख़िल हों और औरत की क़ब्र में उसका शौहर भी दाख़िल हो सकता है। अगर महरम और शौहर मौजूद न हो तब ग़ैर महरम दाख़िल हों। हनफ़ी फ़ुक़हा ने लिखा है कि ग़ैर महरम में जो बूढ़े हों, वो औरत की क़ब्र में दाख़िल हों; अगर बूढ़े मौजूद न हो तो जवानों में जो स्वालेह (नेक) और दीनदार हों वो दाख़िल हों।

अहले मय्यित के यहाँ खाना भेजने के बयान में :

अब्दुल्लाह बिन जाफ़र से रिवायत है कि जब हज़रत ज़ाफ़र तय्यार (रज़ि.) के शहीद होने की ख़बर आई तो रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जाफ़र के अहलो—अयाल के लिये खाना बनाओ। इस लिये कि उनको ऐसी ख़बर मिली है जो खाना बनाने से रोकती है।' (अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, इब्ने माजा)

इमाम तिर्मिज़ी ने इस रिवायत को हसन कहा है। इस हदीष़ से मालूम हुआ कि क़राबतमन्दों और पड़ौसियों को चाहिये कि वो मौत के दिन खाना पकाकर अहले मय्यित के घर भेजें। मुल्ला अली क़ारी (रह.) मिरकात (जिल्द 2 पेज नं. 393) में लिखते हैं कि जब खाना पकाकर भेजा जाए तो मय्यित के घरवालों को इसरार करके खिलाना चाहिये ताकि ऐसा न हो कि वो शदीद रंजो—ग़म की वजह से या शर्मो—लिहाज की वजह से खाना न खाएं और खाना न खाने की वजह से कमज़ोर और परेशान हों। और इस क़दर खाना भेजना चाहिये जो कि दिन और रात दोनों वक़्त के लिये मय्यित के घर वालों के वास्ते काफ़ी हो। इसलिये कि वो रंजो—ग़म जो खाना बनाने से रोकता है, ग़ालिबन एक दिन से ज़्यादा बाक़ी नहीं रहता है और बाज़ ने कहा है कि तीन दिन तक खाना भेजना चाहिये।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन जाफ़र (रज़ि.) की हदीष़ से फ़क़त एक या दो वक़्त खाना भेजना ष़ाबित होता है और तीन दिन तक खाना भेजना न इस हदीष़ से ष़ाबित होता है और न किसी दूसरी हदीष़ से।

अहले मय्यित के यहाँ दफ़न करने के बाद खाना बनाना और खाना

हज़रत जरीर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि.) फ़र्माते हैं कि **हम लोग यानी स़हाब—ए—किराम (रज़ि.) दफ़न के बाद अहले मय्यित के यहाँ जमा होने और खाना बनाने को नयाहत की एक क़िस्म समझते थे यानी जैसे मय्यित पर नौहा करना हराम है उसी तरह दफ़न के बाद अहले मय्यित के यहाँ लोगों का जमा होना और खाना बनाना हराम है।**

इस हदीष़ से मालूम हुआ कि मौत के दिन दफ़न के बाद या मौत के तीसरे दिन (तीजा) या किसी और दिन (जैसे दसवाँ, बीसवाँ, चालीसवाँ या चहल्लुम या आ़म बोलचाल की भाषा में सवा महीना) मौत की वजह से खाना पकाना और बिरादरी वालों व दोस्त–अहबाब को बुलाकर खिलाना हराम व नाजाइज़ है और ये जाहिलियत की रस्म है।

ताज़ियत का बयान :

मुस़ीबत वालों की ताज़ियत करना यानी उनको स़ब्र की तल्क़ीन करना और तसल्ली देना सुन्नत है। ताज़ियत से अहले मय्यित के ग़मज़दा दिलों को तसल्ली होती है और उनको स़ब्र व सुकून हास़िल होता है और ताज़ियत करने वालों को ष़वाब मिलता है। अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जो मुसलमान अपने किसी भाई की मुस़ीबत में उसकी ताज़ियत करे तो अल्लाह तआ़ला उसको क़यामत के दिन बुज़ुर्गी का हुल्ला पहनाएगा।' (इब्ने माजा)

ताज़ियत के वक़्त मय्यित के लिये दुआ़ करना :

ताज़ियत के वक़्त मय्यित के वास्ते दुआ़ करनी चाहिये। **हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) किसी स़हाबी के घर ताज़ियत के लिये गई थीं। जब वापस आईं तो अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने पूछा कि कहाँ गई थीं?** हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) **ने कहा कि उसके घर के लोगों के पास गई थी, पस मैंने उनके मय्यित के वास्ते रहमत की दुआ़ की और उनकी ताज़ियत की।** (अबू दाऊद, निसाई)

क़ब्रों की ज़ियारत और उसकी दुआ़ :

क़ब्रों की ज़ियारत करना मर्दों के लिये सुन्नत है लेकिन औ़रतों को क़ब्रों की ज़ियारत करने से बचना चाहिये। कुछ अहले इल्म औ़रतों के क़ब्रस्तान जाने, क़ब्रों की ज़ियारत करने और उनके लिये दुआ़–ए–मग़्फ़िरत करने को जाइज़ क़रार देते हैं और उसकी दलील में हज़रत आइशा (रज़ि.) के उस वाक़िये का ज़िक्र बयान करते हैं जिसमें वे आप (ﷺ) के पीछे मदीना के क़ब्रस्तान बक़ीअ़ में गई थीं। अस़ल वाक़िया इस तरह से है; हज़रत आइशा रिवायत करती हैं,

'15वीं शाबान की रात मैंने रसूलुल्लाह (ﷺ) को बिस्तर पर न पाकर उन्हें तलाश करते हुए बक़ीअ़ जा पहुँची। आप (ﷺ) को मेरे वहाँ जाने का पता न चले, इसलिये मैं तेज़ क़दमों से चलकर वापस अपने बिस्तर पर आकर लेट गई। जब आप (ﷺ) ने पूछा तो मैंने बक़ीअ़ जाने की बात बता दी। फिर मैंने पूछा कि आइन्दा अगर क़ब्रों की ज़ियारत के लिये जाऊँ तो क्या दुआ़ पढ़ूँ? आप (ﷺ) ने मुझे दुआ़ भी बतलाई।' (मुस्लिम)

लेकिन इस हदीष़ से यह ष़ाबित नहीं होता कि यह इजाज़त आम औरतों के लिये है क्योंकि हज़रत आइशा (रज़ि.) ने आइन्दा अपने लिये क़ब्रस्तान जाने और दुआ करने बाबत पूछा; यह नहीं पूछा कि औरतें क़ब्रस्तान जा सकती हैं या नहीं? और अगर जा सकती है तो क्या दुआ पढ़े? उम्मुल मोमिनीन का रुतबा आम औरतों से ऊँचा है इसलिये इसको आम इजाज़त नहीं माना जा सकता। एक दूसरी हदीष़ में अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने 'कष़रत के साथ क़ब्रस्तान जाने वाली औरतों पर लानत फ़र्माई है।'

अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने क़ब्रों की ज़ियारत की इजाज़त इसलिये दी है कि मुर्दों के लिये मग़्फ़िरत की अस्तग़्फ़ार व दुआएं की जाए और क़ब्रों को देखकर लोगों को अपनी मौत की याद आए और उन्हें इबरत हास़िल हो कि दुनिया हमेशा रहने की जगह नहीं है। क़ब्रों की ज़ियारत का अस़ल मक़स़द यह है कि दुनिया से लगाव कम हो और आख़िरत की याद आए। अगर ये इरादा दिल में नहीं हो तो फिर क़ब्रस्तान जाने और ज़ियारते–कुबूर से कोई फ़ायदा नहीं है। ज़ियारते–कुबूर के लिये कोई ख़ास़ दिन या ख़ास़ वक़्त मुतय्यन नहीं है। जब और जिस वक़्त चाहे, क़ब्रों की ज़ियारत के लिये जा सकते हैं।

रसूलुल्लाह (ﷺ) ने क़ब्रस्तान में जाते वक़्त ये दुआ पढ़ने की ताकीद फ़र्माई है,

'अस्सलामु अलैकुम अहलद्दियारि मिनल मुअमिनीना वल मुस्लिमीन व इन्ना इंशाअल्लाहु ललहिक़ून अस्अलुल्लाह लना व लकुम अल आफ़ियत.' (मुस्लिम)

मोमिन और मुस्लिम घराने के लोगों! तुम पर सलाम हो और इंशा अल्लाह हम भी तुम से मिलने वाले हैं। हम तुम्हारे लिये और अपने लिये आफ़ियत माँगते हैं।

ष़वाब पहुँचाने का बयान :

मय्यित के वास्ते दुआ करना और दुआ का नफ़ा उसको पहुँचाना क़ुर्आन मजीद व सहीह हदीष़ों से ष़ाबित है और तमाम उलम–ए–अहले सुन्नत का भी यही मज़हब है कि दुआ का नफ़ा मय्यित को पहुँचता है। सूरह हश्र में अल्लाह तआला फ़र्माता है,

'जो लोग (मुहाजिरीन व अन्स़ार स़हाबा) के बाद आए वो कहते हैं, ऐ हमारे रब! तू मग़्फ़िरत फ़र्मा हमारी और हमारे उन भाइयों की जिन्होंने ईमान लाने में हम पर सबक़त की।' (सूरह हश्र)

इस आयत से मय्यित के वास्ते दुआ करना और दुआ का नफ़ा पहुँचना ष़ाबित होता है। नमाज़े जनाज़ा में जिस क़दर दुआएं आई हैं, उन तमाम दुआओं से मय्यित के वास्ते दुआ करना और नफ़ा पहुँचाना ष़ाबित होता है। नीज़ बहुत सी सहीह अहादीष़ से भी यही बात ष़ाबित होती है।

इसी तरह इबादते मालिया का षवाब भी मय्यित को पहुँचना सहीह अहादीष से षाबित है और तमाम अहले सुन्नत अइम्मा का मज़हब भी यही है कि माली इबादतों का षवाब मय्यित को पहुँचता है। हज़रत आइशा रिवायत करती हैं,

'एक शख़्स ने अल्लाह के रसूल (ﷺ) से कहा कि मेरी माँ यकायक मर गई और मेरा गुमान है कि अगर वो बात करती यानी उसको बात करने का मौक़ा मिलता तो वा सदक़ा करती। तो अगर मैं उसकी तरफ़ से सदक़ा करूँ तो क्या उसका षवाब उसको पहुँचेगा? आप (ﷺ) ने फ़र्माया, हाँ!' (बुख़ारी, मुस्लिम)

इसी तरह हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि.) से रिवायत है,

'एक शख़्स ने रसूलुल्लाह (ﷺ) से कहा कि मेरी माँ वफ़ात कर गई है। अगर मैं उसकी तरफ़ से सदक़ा करूँ तो क्या उसको नफ़ा पहुँचेगा? आप (ﷺ) ने फ़र्माया, हाँ! उस शख़्स ने कहा कि मेरे पास एक बाग़ है और आप को गवाह रखता हूँ कि मैंने उस बाग़ को अपनी माँ की तरफ़ से सदक़ा कर दिया।' (बुख़ारी)

मुर्दे को दोनों वक़्त सुबह व शाम उसका ठिकाना दिखलाया जाता है। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया,

'जब तुम में से कोई शख़्स मर जाता है तो अगर वो जन्नती है तो जन्नत वालों में और अगर दोज़ख़ी है तो दोज़ख़ वालों में, फिर कहा जाता है ये तेरा ठिकाना है, यहाँ तक कि क़यामत के दिन अल्लाह तुझको उठाएगा।' (बुख़ारी)

मतलब यह है कि अगर वो जन्नती है तो सुबह शाम उसको जन्नत दिखलाई जाती है और अगर वो दोज़ख़ी है तो उसको दोज़ख़ दिखलाई जाती है कि अपने आख़री अंजाम पर आगाह रहे। जन्नतियों की क़ब्र में जन्नत की और दोज़ख़ियों की क़ब्र में दोज़ख़ की खिड़की खोल दी जाती है।

या अल्लाह! अपने फ़ज़्ल व करम से किताब 'जनाज़े के मसाइल' के नाशिर को, उसके वाल्दैन, भाई–बहन, अज़ीज़ो–अकारिब, असातिजा और दोस्त–अहबाब को बेहतर जज़ा नसीब फ़र्मा। बाद मौत के क़ब्र में जन्नत की तरोताज़गी नसीब फ़र्मा, क़यामत के दिन जन्नतुल फ़िरदौस में जगह नसीब फ़र्मा और दोज़ख़ से हम सब को महफ़ूज़ फ़र्मा, आमीन!

नमाज़े जनाज़ा में पढ़ी जाने वाली दुआएं :

(1). पहली तकबीर के बाद षना[1] पढ़े बग़ैर सूरह फ़ातिहा और कोई दूसरी सूरत पढ़ें।

हाशिया 1 : इस हदीष और इसके अलावा दूसरी हदीषों में **'ला इलाहा इल्लल्लाह'** कहने से मुराद शहादतैन यानी **'अश्हदु अल्ला इलाहा इल्लल्लाह व अश्हदु अन्ना मुहम्मदर्रसूलुल्लाह'** हैं। (फ़त्हुल बारी, माख़ूज़ दुआएं)

(2). दूसरी तकबीर के बाद दरुद शरीफ़ पढें।

(3). तीसरी तकबीर के बाद ये दुआ पढ़ें,

'अल्लाहुम्मग़्फ़िरली हय्यिना व मय्यितिना व शाहिदिना व ग़ा–इबिना व स़ग़ीरिना व कबीरिना व ज़करिना व उन्ष़ाना. अल्लाहुम्मन् अहयैतहू मिन्ना फअहयिही इलल इस्लाम व मन् तवफ़्फ़ैतहू मिन्ना तवफ़्फ़हू अलल ईमान. अल्लाहुम्मा ला तह्रिम्ना अज्रहू व ला तफ़्तिन्ना बअदहा.' (अबू दाऊद, तिर्मिज़ी)

ऐ अल्लाह! हमारे ज़िन्दों और मुर्दों को बख़्श दे और हम में जो हाज़िर हैं और जो हाज़िर नहीं हैं। और हमारे छोटों और बड़ों को और मर्दों और औरतों को. ऐ अल्लाह! तू हम में जिसको ज़िन्दा रख उसे इस्लाम पर ज़िन्दा रख और तू हम में से जिसको मौत दे उसको ईमान की हालत में फ़ौत कर. ऐ अल्लाह इसके अज्र से हमको महरूम न रख और हमको फ़ित्ने में न डाल।

दूसरी दुआ यह पढ़ें,

'अल्लाहुम्मग़्फ़िरलहू वरहम्हु व आफ़िही वअफु अन्हु व अक्रिम नुज़ुलहू व वस्सिअ मद्ख़लत वग़्सिल्हु बिल्मा–इ वष़्ष़ल्जु वल्बरदि व नक़्क़िही मिनल ख़ताया कमा नक़्क़ैतष़्ष़ौबल अब्यज़ मिनद्दनसि व अब्दिल्हु ख़ैरम्मिन दारि व अह्लन ख़ैरम्मिन अह्लिही व ज़ौजन ख़ैरन मिन् ज़ौजिही व अद्ख़िल्हुल जन्नत व इज़ुहु मिन अज़ाबिल क़ब्र व मिन् अज़ाबिन्नार' (मुस्लिम)

ऐ अल्लाह! इसके गुनाह बख़्श दे और इस पर अपनी नाज़िल कर और इसको आफ़ियत दे और इसे माफ़ कर दे। और इसकी अच्छी मेहमानी कर और इसकी क़ब्र को कुशादा कर दे। और (इसके गुनाहों को) धो दे पानी, बर्फ़ व ओले से। और इसको गुनाहों से पाक कर दे जैसे तू सफ़ेद कपड़े को मैल से पाक करता है और इसको दुनिया के घर से बेहतर घर इसके यहाँ के अह्लो–अयाल से बेहतर लोग और इसको यहाँ के जोड़े से बेहतर जोड़ा अता फ़र्मा। और इसको जन्नत में दाख़िल फ़र्मा। और इसको क़ब्र के अज़ाब और जहन्नम के अज़ाब से बचा ले।

मुर्दे को दफ़न करने के बाद क़ब्र में उसकी ष़ाबित क़दमी के लिये ये दुआ करें :

'अल्लाहुम्मग़्फ़िरलहू व ष़ब्बित्हु बिल क़ौलिष़्ष़बिति'

ऐ अल्लाह! इसको बख़्श दे और इसको मुस्तहकम बात पर ष़ाबित क़दम रख।

क़ब्र पर मस्जिद बनाना मना है :

जो लोग क़ब्र पर मस्जिद बनाते हैं वो यहूदियों और नसरानियों की पैरवी करते हैं जिन पर अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने लानत फ़र्माई है। (बुख़ारी)

अफ़सोस! हमारे ज़माने में गोर–परस्ती ऐसी शाए हो रही है कि ये नाम के मुसलमान अल्लाह और उसके रसूल (ﷺ) से ज़रा भी नहीं शर्माते। क़ब्रों को पुख़्ता और शानदार बनाते हैं, उन पर इमारतों को देखकर मस्जिद का शुब्हा होता है; हालांकि आँहज़रत (ﷺ) ने सख़्ती के साथ ऐसी तामीरात से मना फ़र्माया है। सुन्नत यही है कि क़ब्र को शरई हद से ज़्यादा बुलन्द न बनाया जाए; चाहे वो किसी आलिम, फ़ाज़िल, सूफ़ी, पीर की हो या ग़ैर आलिम–फ़ाज़िल की और ज़ाहिर है कि शरई इजाज़त से ज़्यादा क़ब्र को ऊँचा करना हराम है। ऐसे मज़ारों के बारे में जाहिल लोग वही ऐतक़ाद रखते हैं जो कुफ़्फ़ार बुतों के बारे में रखते हैं। यानी मुरादें माँगते हैं, उनके लिये दुआएं करने के बजाय उनसे दुआएं माँगते हैं। उनके मज़ारात की तरफ़ सफ़र करते हैं और उनसे फ़रियादरसी करते हैं। अगर इस खुले हुए शिर्क के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द न की जा सकी तो फिर और कौनसा ऐसा गुनाह होगा जिसके लिये हमारी ज़बानें खुल सकेंगी? किसी शाइर ने कहा है, **'अगर तू ज़िन्दों को पुकारता तो सुना सकता था. मगर जिनको तू पुकार रहा है वो तो ज़िन्दगी से क़तअन महरूम हैं. अगर तुम आग में फूँक मारोगे तो रोशनी होगी लेकिन अगर तुम राख में फूँक मारोगे तो कभी रोशनी नहीं हो सकती।'**

ख़ुलासा ये है कि ऐसी क़ब्रों और ऐसे मज़ारों पर उर्स, क़व्वालियाँ, मेले–ठेले, गाने–बजाने के काम करना क़तई तौर पर हराम है और शिर्क है। अल्लाह हर मुसलमान को ज़ाहिरी और छुपे हुए शिर्क से बचाए, आमीन! बस हक़ यही है कि न मुर्दों को इस क़दर ताज़ीम करे कि वो शिर्क हो जाए और न उसकी अहानत व अदावत करे कि मरने के बाद अब मेरे सारे मुआमलात ख़त्म; मरने वाला तो अल्लाह के हवाले हो चुका। बल्कि उनके हक़ में मग़्फ़िरत की दुआएं करे, ष़वाब–रसाई के जो काम अहादीष़ में बताए गये हैं, उनको अंजाम दे और उनका नफ़ा मय्यित को पहुँचाए।

अज़ाबे क़ब्र :

अज़ाबे क़ब्र बरहक़ है; इसके बारे में अल्लाह के रसूल (ﷺ) से मुतवातिर अहादीष़ मरवी हैं, जिनसे अज़ाबे क़ब्र का होना ष़ाबित है। जो लोग इस बारे में शक व शुब्हात पैदा करें, उनकी सोहबत से हर मुसलमान को दूर रहना वाजिब है। मुख़्तसर यह है कि यहाँ क़ब्र से मुराद आलमे बरज़ख़ है। मरने वाले के लिये क़यामत के पहले तक एक आलम और है जिसका नाम बरज़ख़ है और यह दुनिया और आख़िरत के बीच एक आलम है। बहुत सी मय्यितें दफ़न नहीं की जाती है; जैसे पानी में डूब जाने वाला, जल जाने वाला, जानवरों का

निवाला बन जाने वाला वग़ैरह। यह बात हक़ीक़त है कि अज़ाबे क़ब्र मरने वाले हर गुनाहगार पर लाज़िम है, चाहे उसे क़ब्र में दफ़न किया गया हो या न हो। यह भी एक हक़ीक़त है कि हर मरने वाले से फ़रिश्ते सवाल–जवाब करते हैं और यह अज़ाबे क़ब्र मख़्लूक़ से पर्दे में है। बरज़ख़ उस आलम का नाम है जिसमें दुनिया से ज़िन्दगी ख़त्म करके आख़िरत में पहुँच जाता है। बस दुनियावी ज़िन्दगी के ख़ात्मे के बाद वो पहला जज़ा और सज़ा का घर है। क़ुर्आन मजीद में भी इस आलम का ज़िक्र आया है, नेक लोगों के लिये अच्छा ठिकाना यानी इल्लिय्यीन और बुरे लोगों के लिये बुरा ठिकाना यानी सिज्जीन। फिर क़यामत के दिन हर नफ़्स को उसका पूरा–पूरा बदला दिया जाएगा। इसकी तावील की ज़रूरत नहीं है क्योंकि क़ब्र उस जगह का नाम है जहाँ मय्यित का ज़मीन में मकान है। मरने के बाद इन्सान का आख़री मकान ज़मीन ही है, ये ज़िन्दा और मुर्दा सबको जमा करती है। पस मय्यित डूबने वाले की हो या जलने वाले की; उस शख़्स की जिसे दरिन्दों (हिंसक जानवरों) ने खा लिया हो या उसकी जिसे दरिया में मछली ने निगल लिया हो। सब को आख़िरकार ज़मीन में मिलना है। जान लो कि किताबो सुन्नत की दलाइल की बिना पर अज़ाबे क़ब्र बरहक़ है, जिस पर सारे अइम्म–ए–अहले इस्लाम का इज्माअ (सर्वसम्मति) है। मज़ीद तफ़्सील के लिये किताबुर रूह (अल्लामा इब्ने क़य्यिम) का मुतालआ किया जाए।

मक़ामे इबरत :

मगर किस क़दर अफ़सोस की बात है कि बहुत से लोग क़ब्रस्तान में आते हैं और हंसी–ख़ुशी के अन्दर वक़्त गुज़ार देते हैं; बहुत से लोग बीड़ी–सिगरेट पीने में लग जाते हैं। इधर–उधर की बातें करते रहते हैं। ऐसे लोगों को सोचना चाहिये कि एक दिन उनको भी मरना है और उनको भी क़ब्र में दाख़िल होना है। किसी न किसी दिन क़ब्रों को याद करके आख़िरत की याद ताज़ा कर लिया करें और अपने दिलों को पिघला लिया करें।

मय्यित के घर खाने की दावतें :

आजकल यह रिवाज आम है और देखने में भी आया है कि जब किसी की मौत हो जाती है तो मय्यित के ख़ानदान वाले दअवते–तआम का इन्इक़ाद (भोज का आयोजन) करते हैं और खाने के लिये दअवत देकर बुलाते हैं। यह रस्म तीजा, दसवाँ, बीसवाँ और चालीसवाँ (चहल्लुम/सवा महीना) के नाम पर आज के मुस्लिम समाज की क़रीब–क़रीब हर बिरादरी में किसी न किसी रूप में राइज़ (प्रचलित) है। ये दअवतें दो मक़सदों से की जाती है :–

01. मरने वाले की रूह को ईसाले–षवाब के नाम पर.

02. अहले मय्यित के घर से सोग उठने के ऐलान के तौर पर.

लोग यह समझते हैं कि जब घर में किसी की मौत हो जाए तो उसकी रूह की

तस्कीन के लिये खाना पकाकर खिलाना ज़रूरी है जबकि ये सरासर ग़ैर–इस्लामी रिवाज है। **हिन्दू समाज में जब किसी की मौत हो जाती है तो मय्यित के परिवार वालों की तरफ़ से मृतक की आत्मा की शान्ति के लिये बारहवाँ, मौसर वग़ैरह नामों से मृत्यु–भोज का आयोजन किया जाता है। हिन्दू समाज में यह मान्यता प्रचलित है कि अगर मृत्यु–भोज न किया जाए तो मृतक की अतृप्त आत्मा भटकती है।**

इस्लाम धर्म में ऐसे जाहिलाना नज़रियात के लिये कोई जगह नहीं है। अगर मरने वाला नेक लोगों में से था तो उसकी रूह को 'इल्लिय्यीन' में रखा जाता है और जन्नत की नेअ़मतों से उसकी ख़ातिरदारी की जाती है। अगर किसी रूह को जन्नत की नेअ़मत मिल रही हो तो उसे दुनियावी खानों की क्या ग़रज? इसी तरह अगर मरने वाला बुरे लोगों में से हो तो उसकी रूह को 'सिज्जीन' में रखा जाता है और उस पर अ़जाबे क़ब्र होता है। जिस रूह को अल्लाह की तरफ़ से अ़ज़ाब हो रहा हो उसको लज़ीज़ खाने खिलाने की मजाल किसकी हो सकती है? मतलब कहने का यह है कि मौत के बाद खाना खिलाने के रिवाज का मरने वाले की रूह से कोई तअ़ल्लुक़ नहीं है।

जिस घर में मौत वाक़ेअ़ होती है, उस घर के लोग एक मुद्दत तक के लिये, सोग के नाम पर, अपने आप को और अपने परिवार को शादी–ब्याह और ईद जैसे हर ख़ुशी के मौक़े पर ख़ुशियाँ मनाने से रोक लेते हैं। उस मुद्दत के बाद मरने वाले के वारिषों की तरफ़ से दावत की जाती है जिसे मुख़्तलिफ़ नामों से पुकारा जाता है, मसलन बीसवाँ, चालीसवाँ, सवा महीना वग़ैरह। इस्लाम में सोग की मुद्दत ज़्यादा से ज़्यादा तीन दिन है, अलबत्ता जिस औरत का शौहर मर जाए सिर्फ़ उसके लिये चार महीने दस दिन का सोग है। तीन दिन से ज़्यादा सोग रखना इस्लामी शरीयत में नाजाइज़ है। ख़ुशी और ग़म; दोनों तरह के मौक़े अल्लाह ही अ़ता करता है, किसी की मौत के बाद शरई हद से ज़्यादा दिन का सोग रखना और ख़ुशी से मौक़ों से दूर रहना अल्लाह की नेअ़मत की नाक़द्री है। दूजा, तीजा, चहारुम, दसवाँ, बीसवाँ, चालीसवाँ जैसे जाहिलाना रिवाज इस्लाम में हराम हैं। बहुत से ग़रीब लोग इन रस्मों को अदा करने के लिये या तो अपने ज़ेवर–जायदाद बेचते हैं या फिर सूद (ब्याज) पर रक़म लाते हैं और इस काम को अंजाम देते हैं।

इस्लामी शरीयत ने मय्यित वाले घर में दावत करने को नौहा में शुमार किया है। एक बार फिर आप मुलाहिज़ा फ़र्माएं :–

✲ सुनन इब्ने माजा में रिवायत है कि सहाब–ए–किराम मय्यित के घर पर जमा होने, खाना तैयार करने और खाना खाने को नौहा में शुमार करते थे।

✲ यह रिवायत मुस्नद अहमद में भी है और इसमें यह भी है कि मय्यित के घरवालों के यहाँ दावत खाना मौत वाले दिन हम सब हराम समझते थे।

✻ इमाम शौकानी (रह.) ने लिखा है कि मय्यित के घरवालों के यहाँ खाना रसूलुल्लाह (ﷺ) की सुन्नत के ख़िलाफ़ है, इसलिये यह हराम क़रार दिया गया है। शरीयत में इसका कोई षुबूत नहीं मिलता है।

✻ हनफ़ी मस्लक की मशहूर फ़तवों की किताब 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ाँ' में है कि मुसीबत के दिनों में किसी को खाने की दावत देना हराम है क्योंकि यह ख़ुशी मनाने का नहीं सोग का मौक़ा होता है।

✻ इमाम अहमद रज़ा ख़ान बरेलवी साहब से किसी ने पूछा कि मय्यित के लिये दावत जाइज़ है या नहीं? तो उन्होंने फ़र्माया, 'ऐ मुसलमान! तू यह पूछता है कि जाइज़ है या नहीं; तू यह पूछ कि इस नापाक रस्म में कितनी ख़राबियाँ है?'

(फ़तावा रज़विया : 138)

लिहाज़ा इस तरह के खाने की हुरमत पर तमाम अइम्म–ए–उम्मत का इत्तेफ़ाक़ है और यह अ़मल अल्लाह के रसूल (ﷺ) और सहाब–ए–किराम की सुन्नत के भी ख़िलाफ़ है। आप (ﷺ) की मौजूदगी में बहुत सी मौतें हुईं लेकिन इस तरह के खाने और दावतों की कोई दलील नहीं मिलती। इसलिये मय्यित के घर जमा होकर खाना पकाना और खाना दीने इस्लाम की बात नहीं है।

भाइयों और बहनों! अब तक हम से जो ग़लतियाँ हुई हैं, उनको अल्लाह माफ़ करे लेकिन अब चूँकि हक़ बात हमको मालूम हो गई है इसलिये यह अ़ज़्म करें कि इंशाअल्लाह अब इसी के मुताबिक़ ही ज़िन्दगी गुज़ारेंगे। इस तरह की तमाम ग़ैर– शरई रस्मों से अल्लाह तआ़ला हमको दूर रखे, अल्लाह हमें क़ुर्आन व सुन्नत की तालीमात पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ दे और हर क़िस्म के शिर्किया अ़मल और बिदअ़तों से हमें महफ़ूज़ रखे, आमीन!!

दुनिया के ऐ मुसाफ़िर

दुनिया के ऐ मुसाफ़िर मञ्ज़िल तेरी क़बर है,
जो तय तू कर रहा है दो दिन का ये सफ़र है।

जबसे बनी है दुनिया लाखों–करोड़ों आए,
बाक़ी रहा न कोई मिट्टी में सब समाए,
इस बात को न भूलो सबका यही हशर है,
जो तय तू कर रहा है दो दिन का ये सफ़र है।

मखमल पे सोने वाले मिट्टी पे सो रहे हैं,
शाहो–गदा बराबर सब एक हो रहे हैं,
ये ऊँचे–ऊँचे बंगले कुछ काम के नहीं है,
जो तय तू कर रहा है दो दिन का ये सफ़र है।

आँखों से तूने अपनी कितने जनाज़े देखे,
हाथों से तूने अपने दफ़नाए कितने मुर्दे,
अञ्जाम से तू अपने क्यूँ इतना बेख़बर है,
जो तय तू कर रहा है दो दिन का ये सफ़र है।

दुनिया के ऐ मुसाफ़िर मञ्ज़िल तेरी क़बर है,
जो तय तू कर रहा है दो दिन का ये सफ़र है।